



# फसल विविधीकरण में तिलहनी फसलों की भूमिका

सुभाष बाबू<sup>1</sup>, ऋषिराज<sup>1</sup>, रूचिका चौधरी<sup>2</sup>, सुदेश<sup>1</sup>,  
संजय सिंह राठौर<sup>1</sup> और सी.एच. श्रीनिवासराम<sup>1</sup>

भारतीय कृषि की जटिल चुनौतियों के समाधान हेतु फसल विविधीकरण को लंबे समय से एक प्रभावी नीति माना गया है। विशेष रूप से धान-गेहूं एकल फसल प्रणाली के प्रभुत्व ने मृदा उर्वरता में कमी, भूजल स्तर में कमी, पोषक तत्वों की असंतुलनता, कीट एवं रोग प्रकोप तथा पर्यावरणीय तनाव जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। दूसरी पीढ़ी की इन चुनौतियों के साथ-साथ खाद्य तेलों की घरेलू आवश्यकता का 50 प्रतिशत से अधिक आयात पर निर्भर होना स्थिति को और गंभीर बना देता है। वर्तमान में भारत प्रतिवर्ष लगभग 140 लाख टन (लगभग 1.66 लाख करोड़ रुपये मूल्य का) खाद्य तेल आयात करता है, जो न केवल अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव डालता है, बल्कि देश को वैश्विक बाजार की मूल्य अस्थिरताओं के प्रति भी संवेदनशील बना देता है। यह परिदृश्य तिलहनी फसलों को शामिल कर कृषि प्रणाली में विविधता लाने की आवश्यकता और प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है, जिससे स्थिरता, लचीलापन और आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन मिलता है। भारतीय कृषि में तिलहन क्षेत्रफल और उत्पादन की दृष्टि से खाद्यान्नों के बाद दूसरा स्थान रखते हैं। देश में 9 प्रमुख तिलहनी फसलें-मूंगफली, तोरिया-सरसों, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल, कुसुम, रामतिल, अरंडी और अलसी लगभग 26-27 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती हैं, जो कुल फसल क्षेत्र का लगभग 14 प्रतिशत है। ये फसलें न केवल घरेलू उपयोग हेतु खाद्य तेल प्रदान करती हैं, बल्कि पशु आहार के लिए प्रोटीन युक्त खली, पेंट, सौंदर्य प्रसाधन, डिटर्जेंट तथा जैव-ईंधन उद्योगों के लिए भी कच्चा माल उपलब्ध करवाती हैं। इसके साथ ही, ये ग्रामीण रोजगार और किसानों की आय में भी उल्लेखनीय योगदान देती हैं।

**भारत** वैश्विक स्तर पर तिलहन उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विश्व में देश का अरंडी, कुसुम, तिल और रामतिल

<sup>1</sup>भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली; <sup>2</sup>महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

उत्पादन में अग्रणी, जबकि मूंगफली में दूसरा, तथा रेपसीड-सरसों में तीसरा स्थान है। वर्ष 2022-23 में तिलहनों का रिकॉर्ड 413.5 लाख टन घरेलू उत्पादन होने के बावजूद, मांग और आपूर्ति के बीच असमानता बनी हुई है। यह स्थिति तिलहनी फसलों के साथ फसल

विविधीकरण को अपनाने की आवश्यकता को और सशक्त रूप से रेखांकित करती है।  
**तिलहनी फसलों की फसल विविधीकरण के लिए उपयुक्तता**

विविध फसल चक्र न केवल कीट एवं रोग चक्रों को तोड़ते हैं, बल्कि खरपतवार दबाव को कम करने तथा रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों पर निर्भरता घटाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं। इससे पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा मिलता है और मृदा की दीर्घकालिक उत्पादकता बनी रहती है।

जल-दक्षता के दृष्टिकोण से भी तिलहन धान और गन्ने जैसी जल-प्रधान फसलों की तुलना में कहीं अधिक उपयुक्त हैं। इन्हें मात्र एक-तिहाई सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि ये फसलें वर्षा आधारित क्षेत्रों, लवणीय मृदा वाले भूभागों तथा जल अभावग्रस्त इलाकों के लिए विशेष रूप से अनुकूल विकल्प प्रस्तुत करती हैं।

आर्थिक दृष्टि से, तिलहनी फसलें किसानों की एकल फसल पर निर्भरता को कम करती हैं, श्रम आवश्यकताओं को पूरे वर्ष में संतुलित रूप से वितरित करती हैं और अतिरिक्त आय के अवसर प्रदान करती हैं। तिल एवं सूरजमुखी जैसी अल्पावधि तिलहन फसलें देर से वर्षा होने या मुख्य फसलों के असफल होने की स्थिति में कैच अथवा आकस्मिक फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं।

इन फसलों से प्राप्त ऊर्जा-सघन तेल और प्रोटीन समृद्ध उप-उत्पाद न केवल घरेलू पोषण को सुदृढ़ बनाते हैं, बल्कि डेयरी एवं पोल्ट्री क्षेत्रों की आवश्यकताओं को भी पूरा करते हैं। इससे फसल एवं पशुधन आधारित उद्यमों का एकीकृत, स्थायी और अधिक लचीला कृषि-प्रणाली मॉडल विकसित होता है।

भारत की विविध कृषि जलवायु परिस्थितियां मौजूदा कृषि प्रणालियों में तिलहनों के एकीकरण के लिए अपार संभावनाएं प्रदान करती हैं। अतः तिलहनी फसलें फसल विविधीकरण के लिए न केवल पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ हैं, बल्कि आर्थिक और पोषणीय दृष्टि से भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती हैं।

**तिलहन की खेती की बाधाएं**

भारत में लगभग 76 प्रतिशत तिलहन क्षेत्र वर्षा पर निर्भर है, जिसके कारण यह फसल विशेष रूप से वर्षा की अनिश्चितता और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के प्रति संवेदनशील है। गुणवत्तापूर्ण बीजों की सीमित उपलब्धता, अकुशल विस्तार सेवाएं तथा

## तिलहन के साथ धान-गेहूं फसल प्रणाली

पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ हिस्सों में धान-गेहूं प्रणाली ने खाद्य सुरक्षा तो प्रदान की है, दीर्घकालिक समस्याएं भी उत्पन्न की हैं, जैसे-भूजल का हास, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, कीटों का प्रकोप और सीमित कृषि आय।

तिलहनी फसलें, जैसे रेपसीड/सरसों, सूरजमुखी, कुसुम और अलसी, चावल-गेहूं प्रणाली में शामिल करने से कृषि-संबंधी, पर्यावरणीय और आर्थिक लाभ मिलते हैं। इस फसल प्रणाली के लिए आशाजनक विविधीकरण विकल्प निम्न हैं:

- मक्का-सरसों
- मक्का-सरसों-ग्रीष्मकालीन मूंग
- धान-सरसों
- धान-सरसों-ग्रीष्मकालीन मूंग
- धान-अलसी
- सोयाबीन-गेहूं

उन्नत फसल प्रबंधन पद्धतियों को अपर्याप्त अपनाता उत्पादकता वृद्धि में प्रमुख बाधाएं हैं। इसके अतिरिक्त, प्रसंस्करण, भंडारण और मूल्यवर्धन अवसंरचना की कमी के कारण कटाई के बाद होने वाले नुकसान उत्पादन लाभ को गंभीर रूप से कम कर देते हैं।

### फसल विविधीकरण की नीतियां

तिलहनी फसलें भारत के कृषि परिदृश्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, जो पोषण सुरक्षा, खाद्य तेलों की उपलब्धता और किसानों की आय में योगदान करती हैं। भूमि और जल संसाधनों पर बढ़ते दबाव के बीच, भूमि उपयोग का अनुकूलन और कृषि प्रणालियों में विविधता लाना समय की आवश्यकता बन गया है। तिलहनी फसलों को शामिल करने से उत्पादकता, स्थिरता और संसाधनों की दक्षता में उल्लेखनीय सुधार संभव है।

### अंतर-फसल के माध्यम से भूमि उपयोग में वृद्धि

अनाज, दलहन और व्यावसायिक फसलों के साथ तिलहन की अंतर-फसल से भूमि और संसाधनों की जैविक दक्षता में वृद्धि होती है। यह विधि पोषक तत्वों, प्रकाश और नमी के सहक्रियात्मक उपयोग को प्रोत्साहित करती है और उत्पादन जोखिम को भी कम



गेहूं और सरसों

करती है। वैकल्पिक आय स्रोतों के सृजन के अलावा, ऐसी अंतर-फसल प्रणालियां मृदा उर्वरता के संरक्षण में भी सहायता करती हैं और वर्षा आधारित परिस्थितियों में उपज में स्थिरता प्रदान करती हैं।

### धान और अन्य परती भूमि का तिलहनी फसलों का उत्पादन करके उपयोग

परती भूमि में अल्पावधि तिलहनी फसलों को शामिल करके फसल गहनता बढ़ाने की अपार संभावनाएं हैं। इन फसलों के समावेश से न केवल मृदा की उर्वरता एवं स्वास्थ्य में सुधार होता है, बल्कि उत्पादकता और किसानों की आय भी बढ़ती है। कम पानी की आवश्यकता वाली अल्पावधि तिलहनी फसलें जैसे-सरसों, तोरिया, अलसी, मूंगफली, तिल और कुसुम लघु एवं सीमांत किसानों के लिए व्यावहारिक और लाभकारी विकल्प सिद्ध हो रही हैं।

धान-परती क्षेत्र मुख्यतः वर्षा आधारित कृषि-पारिस्थितिकीय तंत्रों में पाए जाते हैं, जहां गहरी जलोढ़ और तटस्थ से अम्लीय पी-एच मान वाली मृदा पाई जाती है। इन क्षेत्रों में टीआरएफ जैसी योजनाएं बिहार, पश्चिम बंगाल और छत्तीसगढ़ में तिलहनी फसलों के विस्तार को बढ़ावा दे रही हैं। अल्पावधि किस्में जैसे-सरसों, कुसुम और तिल, पूर्ववर्ती धान फसल की शेष नमी एवं सीमित सिंचाई के सहारे सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। इसी प्रकार मूंगफली की खेती ओडिशा, पश्चिम बंगाल और गुजरात के धान परती एवं नदी बेसिन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक स्थापित हो चुकी है, जबकि तिल और सूरजमुखी की खेती पश्चिम बंगाल एवं अन्य पूर्वी राज्यों की परती भूमि में तेजी से विस्तार कर रही हैं।

### पारंपरिक क्षेत्रों के अलावा विविधीकरण

तिलहन की खेती अब केवल पारंपरिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसका विस्तार नए भौगोलिक क्षेत्रों और मौसमों तक हो रहा है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय के अवसर मिल रहे हैं। उदाहरणस्वरूप,

## फसल विविधीकरण में तिलहनी फसलों से लाभ

- धान-गेहूं प्रणाली में आमतौर पर पाए जाने वाले कीट, रोग और खरपतवार के जोखिम को कम करता है।
- मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता है। गहरी जड़ों वाली तिलहनी फसलें, जैसे-सरसों और मूंगफली, मृदा संरचना, वायु संचार और पोषक चक्र को बेहतर बनाती हैं।
- जल का कुशल उपयोग होता है। अधिकांश तिलहन को धान की तुलना में कम सिंचाई की आवश्यकता होती है।
- कम अवधि वाली फसलें, जैसे-तिल, सूरजमुखी और तोरिया, कई फसलचक्र में समाहित हो सकती हैं, जिससे भूमि उपयोग की अनुकूलता बढ़ती है।
- खाद्य तेलों की मजबूत मांग और लाभकारी कीमतों के कारण किसानों को उच्च लाभ मिलता है।
- आय के स्रोतों का विविधीकरण करके और एकल फसल पर निर्भरता घटाकर किसानों के जोखिम को कम किया जा सकता है।
- तिलहन प्रसंस्करण (पेराई, शोधन) और मूल्य श्रृंखला में रोजगार सृजन होता है।
- आयात प्रतिस्थापन के माध्यम से भारत के भारी खाद्य तेल आयात बिल को कम करने में मदद मिलती है।
- आहार विविधता में सुधार होता है। तिलहन प्रोटीन, आवश्यक वसायुक्त अम्ल, विटामिन और खनिजों से भरपूर होते हैं।
- कृषक परिवारों और समुदायों के लिए पोषण सुरक्षा को बढ़ावा देता है।
- फसल प्रणालियों में जैव विविधता बढ़ाता है।
- कम मीथेन उत्सर्जन के कारण धान की तुलना में कम कार्बन फुटप्रिंट होता है।

सूरजमुखी को अब गंगा के मैदानी क्षेत्रों में वसंत ऋतु की फसल और पश्चिम बंगाल तथा ओडिशा में रबी की फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा रहा है। मूंगफली उत्तर प्रदेश में रबी फसल के रूप में अपनाई जा रही है, जबकि मध्य प्रदेश, गुजरात और छत्तीसगढ़ में रबी मौसम में कुसुम की खेती को बढ़ावा मिला है। इसी तरह, सरसों का विस्तार आंध्र प्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक जैसे गैर पारंपरिक राज्यों तक



मूंग और सूरजमुखी

हो चुका है और सोयाबीन को भी तेलंगाना में प्रोत्साहित किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त, तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु और हरियाणा में रबी मौसम की फसल के रूप में अरंडी का महत्व तेजी से बढ़ रहा है।

तिलहन क्षेत्र की बाधाओं को दूर करने के लिए एक सर्व-समावेशी दृष्टिकोण आवश्यक है। इसमें तकनीकी हस्तक्षेप, अनुकूल नीतियां, बुनियादी ढांचे में निवेश और किसानों की संस्थागत सुदृढ़ता शामिल हो। भविष्य में खाद्य तेलों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु तिलहन आधारित फसल विविधीकरण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। इसके लिए धान, परती और मक्का परती जैसे गैर पारंपरिक क्षेत्रों में तिलहन विस्तार में कुशल जल प्रणाली, अंतरफसल और क्रमिक फसल मॉडल, उन्नत बीज प्रणालियां, तथा मशीनीकरण और सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को बढ़ावा देना अनिवार्य है। इसके साथ ही, मूल्य संवर्धन, ब्रांडिंग और कृषि प्रसंस्करण में निवेश किसानों की लाभप्रदता को सुदृढ़ करेगा, जबकि स्थिर मूल्य विनियमन और प्रभावी खरीद व्यवस्थाएं लघु किसानों को संगठित मूल्य श्रृंखला से जोड़ने में मदद करेंगी।

किसानों को क्षमता निर्माण और प्रौद्योगिकी अपनाने को प्रोत्साहित करने के लिए किसान क्षेत्रीय विद्यालयों, विस्तार कार्यक्रमों और डिजिटल प्लेटफॉर्मों की भूमिका निर्णायक होगी। यदि वैज्ञानिक अनुसंधान, नीतिगत पहलों और किसानों की सक्रिय भागीदारी को एक साथ जोड़ा जाए, तो तिलहन आधारित विविधीकरण न केवल उच्च उत्पादन और बेहतर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करेगा, बल्कि आयात पर निर्भरता को कम करते हुए एक पारिस्थितिक रूप से टिकाऊ कृषि प्रणाली की नींव भी रखेगा।

### तिलहन विकास कार्यक्रम

भारत सरकार ने तिलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए समय-समय पर अनेक योजनाएं और नीतिगत पहलें लागू की हैं। इनका विकास कालक्रम इस प्रकार है:

- **वर्ष 1966-1969:** मूंगफली का अधिकतम उत्पादन कार्यक्रम
- **वर्ष 1970-1974:** मूंगफली, अरंडी, रामतिल, रेपसीड-सरसों, सोयाबीन और सूरजमुखी पर प्रदर्शन
- **वर्ष 1974-1975:** गहन तिलहन विकास कार्यक्रम (आईओडीपी)
- **वर्ष 1985-1986:** राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजना (एनओडीपी)
- **वर्ष 1986:** तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन (टीएमओ) का शुभारंभ; एनओडीपी का पुनर्गठन
- **वर्ष 1990-1991:** एनओडीपी और आईओडीपी का विलय कर तिलहन उत्पादन कार्यक्रम (ओपीपी) शुरू
- **वर्ष 2004-2014:** एकीकृत तिलहन, दलहन, पाम ऑयल और मक्का पर केंद्रित योजना (आई.एस.ओ.पी.ओ.एम.)
- **वर्ष 2012-2014:** आर.के.वी.वाई. के अंतर्गत पाम ऑयल क्षेत्र विस्तार (ओ.पी.ई.ई.)
- **वर्ष 2014-2015:** राष्ट्रीय मिशन ऑन ऑयल सीड्स एंड ऑयल पाम (एनएमओओपी), जिसमें तीन मिनी मिशन शामिल थे-एमएम-1: तिलहन, एमएम-2: पाम ऑयल, एमएम-3: वृक्षजनित तिलहन
- **वर्ष 2018-2019:** एन.एम.ओ.ओ.पी. का राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एन.एफ.एस.एम.) में विलय, और एन.एफ.एस.एम.-तिलहन, एन.एफ.एस.एम.-पाम ऑयल, एन.एफ.एस.एम.-टी.बी.ओ. के रूप में कार्यान्वयन
- **वर्ष 2024:** राष्ट्रीय खाद्य तेल मिशन-तिलहन (एनएमईओ-तिलहन), सात वर्षों (वर्ष 2024-25 से 2030-31) के लिए 10,103 करोड़ रुपये की योजना। इसका लक्ष्य तिलहन उत्पादन को 390 से बढ़ाकर 697 लाख टन करना है। मिशन का फोकस रेपसीड-सरसों, मूंगफली, सोयाबीन, सूरजमुखी, तिल और द्वितीयक तेलों पर है। इसकी मुख्य नीतियों में उच्च उपज वाले बीज, जीनोम संपादन, चावल की परती भूमि का उपयोग, अंतर-फसल और फसल विविधीकरण शामिल हैं।